माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र नाथ मित्तल के समक्ष ,

अमीन लाल - याचिकाकर्ता,

बनाम

मैसर्स फरीदाबाद ऑटो इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड
- उत्तरदाता।

1978 का सिविल संशोधन संख्या 532।

5 अक्टूबर, 1978।

सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का वी) - आदेश 38, नियम 5 - भारतीय संविदा अधिनियम। (1872 का IX) - धारा 135 - धारा 135 में निहित न्यायसंगत सिद्धांत - क्या आदेश 38, नियम 5 के तहत निष्पादित जमानती बांड पर लागू होता है - न्यायिक कार्यवाही में समझौता जिसमें जमानती बांड निष्पादित किया जाता है - जमानतदार की देयता - क्या निर्वहन किया गया है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 135 में निहित न्यायसंगत सिद्धांत सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 38, नियम 5 के तहत न्यायालय के पक्ष में निष्पादित जमानती बांड पर लागू होते हैं।

(पैरा 3)

यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 135 के अनुसार, लेनदार और प्रमुख देनदार के बीच एक अनुबंध जिसके द्वारा लेनदार एक संयोजन करता है, या मुकदमा करने के लिए समय देने या नहीं देने का वादा करता है, प्रमुख देनदार जमानत का निर्वहन करता है, जब तक कि जमानतदार ऐसे अनुबंध के लिए सहमति नहीं देता है। यदि जमानत बांड की शर्तों से पता चलता है कि पार्टियों के बीच समझौता उचित विचार के भीतर था, और जमानतदार ने इस तथ्य को जानते हुए बांड निष्पादित किया, तो उसकी देयता समझौता डिक्री के तहत अर्जित होगी। लेकिन अगर बॉन्ड की शर्तों से पता चलता है कि पार्टियों के बीच ऐसा कोई चिंतन नहीं था, तो उनके बीच समझौता जमानतदार के निर्वहन को प्रभावित करेगा। यदि समझौते में न्यायिक कार्यवाही के कुछ बाहरी मामले शामिल किए जाते हैं, तो जमानतदार को भी आरोपमुक्त कर दिया जाएगा।

(पैरा 3)

श्री जेडी चांदना के आदेश में संशोधन के लिए सी.पी.सी. की धारा 115 के तहत आवेदन। उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, बल्लभगढ़ दिनांक 7 मार्च, 1978 को आपत्तिकर्ता की आपत्ति याचिका को खारिज कर दिया। फरीदाबाद ऑटो इंडस्ट्रीज बनाम पारस मैकेनिकल।
अपील में दावा: किसके लिए? निचली अदालत के आदेश पलटना।

याचिकाकर्ता की ओर से गोपी चंद, अधिवक्ता।
प्रतिवादी की ओर से जी.सी. मित्तल, अधिवक्ता।

निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र नाथ मित्तल

1) तथ्य यह है कि मेसर्स स्पेंसर लॉक कंपनी ने श्री अजीत कुमार मित्तल के माध्यम से पारस मैकेनिकल इंडस्ट्रीज और भीम प्रोडक्ट्स के खिलाफ लाइसेंस शुल्क के बकाया के रूप में 50,327.50 रुपये की वसूली के लिए अपने भागीदार श्री सुरिंदर मेला राम भीमरा के माध्यम से मुकदमा दायर किया। वादी ने प्रतिवादी की संपत्ति की कुर्की के लिए नागरिक प्रक्रिया संहिता के नियम 5 के आदेश 38 के तहत एक आवेदन भी दायर किया। अदालत ने उस आवेदन के आधार पर प्रतिवादी को एक निश्चित राशि के लिए सुरक्षा प्रदान करने या पेश होने और कारण बताने के लिए कहा कि उसे सुरक्षा क्यों नहीं प्रस्तुत करनी चाहिए। इस बीच उसने अपनी कुछ संपत्ति यों को सशर्त कुर्क करने का भी आदेश दिया। प्रतिवादी ने 23 जुलाई, 1975 को देवी दयाल भाटिया नामक व्यक्ति का एक बॉन्ड दायर किया, जिसके तहत वह अदालत को 60,000 रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हो गया, अगर प्रतिवादी कुर्क की गई संपत्ति को पेश करने और उसके निपटान में रखने में विफल रहा। इस बॉन्ड की अवधि 11 अगस्त 1975 को खत्म हो रही थी। 26 जुलाई, 1975 को अमीन लाल याचिकाकर्ता ने अदालत द्वारा आवश्यक होने पर कुर्क किए गए माल के उत्पादन के लिए एक और बांड प्रस्तुत किया, या उसी या उसके ऐसे हिस्से का मूल्य जो डिक्री को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो सकता है, और ऐसा करने में विफल रहने पर, उन्होंने अदालत को 60,000 रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए खुद को बाध्य किया। 1 अगस्त, 1975 को वादी ने प्रतिवादी के साथ एक समझौता किया, जिसके आधार पर वादी को उसी दिन 5,000 रुपये प्रति मासिक की किस्तों में देय 60,000 रुपये का डिक्री दिया गया। डिक्री में आगे कहा गया है कि किसी भी एक किस्त के भुगतान में चूक के मामले में, पूरी राशि या तो प्रतिवादी से या उसके जमानतदार अमीन लाल से एकमुश्त वसूली जाएगी।
2) निर्णय-देनदार ने देय राशि का भुगतान नहीं किया। इसलिए डिक्री-धारक ने निष्पादन आवेदन दायर किया और प्रार्थना की कि अमीन लाल जमानतदार से राशि प्राप्त की जाए। उन्होंने 3 मार्च, 1976 को एक आपत्ति याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई कि डिक्री उनके लिए बाध्यकारी नहीं थी क्योंकि वादी ने प्रतिवादी के साथ एक समझौता किया था, जिसके संदर्भ में वह किस्तों में राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हो गया था। डिक्री-धारक द्वारा आपत्ति याचिका का विरोध किया गया था। निष्पादन न्यायालय ने निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए –
    1. क्या 3 मार्च, 1976 की आपत्ति याचिका में निहित आधारों पर अमीन लाल, आपत्तिकर्ता के खिलाफ डिक्री निष्पादित नहीं की जा सकती है।
    2. मदद।

यह निष्कर्ष निकाला गया कि अमीन लाल जमानतदार की देयता एक समझौता डिक्री के पारित होने के साथ समाप्त नहीं हुई। नतीजतन उसने याचिका खारिज कर दी। अमीन लाल जमानतदार ने निष्पादन न्यायालय के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की है।

3) निर्णय-देनदार ने देय राशि का भुगतान नहीं किया। इसलिए डिक्री-धारक ने निष्पादन आवेदन दायर किया और प्रार्थना की कि अमीन लाल जमानतदार से राशि प्राप्त की जाए। उन्होंने 3 मार्च, 1976 को एक आपत्ति याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई कि डिक्री उनके लिए बाध्यकारी नहीं थी क्योंकि वादी ने प्रतिवादी के साथ एक समझौता किया था, जिसके संदर्भ में वह किस्तों में राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हो गया था। डिक्री-धारक द्वारा आपत्ति याचिका का विरोध किया गया था। निष्पादन न्यायालय ने निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए - क्या 3 मार्च, 1976 की आपत्ति याचिका में निहित आधारों पर अमीन लाल,

आपत्तिकर्ता के खिलाफ डिक्री निष्पादित नहीं की जा सकती है? मदद। यह निष्कर्ष निकाला गया कि अमीन लाल जमानतदार की देयता एक समझौता डिक्री के पारित होने के साथ समाप्त नहीं हुई। नतीजतन उसने याचिका खारिज कर दी। अमीन लाल जमानतदार ने निष्पादन न्यायालय के आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की है।

4) मैंने विद्वान वकील के तर्क पर उचित विचार किया है। अनुबंध अधिनियम की धारा 135 कहती है कि लेनदार और प्रमुख देनदार के बीच एक अनुबंध, जिसके द्वारा लेनदार प्रमुख देनदार के साथ एक संयोजन करता है, या मुकदमा करने के लिए समय देने या नहीं करने का वादा करता है, जब तक कि जमानतदार ऐसे अनुबंध के लिए सहमति नहीं देता है। राजा बहादुर धनराज गिरजी बनाम राजा पी. पार्थसारथी रायनवरु और अन्य (1) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह तय किया गया है, भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 135 में निहित न्यायसंगत सिद्धांत अदालत के पक्ष में निष्पादित जमानती बॉन्ड पर लागू होते हैं। गजेंद्रगडकर जे. की प्रासंगिक टिप्पणियां, जैसा कि वह उस समय थे, इस प्रकार हैं:-

> "हालांकि भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 135 अदालत के पक्ष में निष्पादित जमानती बांड पर लागू नहीं होती है, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उस धारा में अंतर्निहित न्यायसंगत नियम उस पर लागू होना चाहिए। उक्त नियम का कारण जो जमानत को निर्वहन का हकदार बनाता है, यह है कि वह किसी भी समय या तो लेनदार को अपने ऋण का भुगतान करने के लिए मुख्य देनदार को बुलाने की आवश्यकता में सक्षम होना चाहिए, या खुद को ऋण का भुगतान करने और प्रमुख देनदार के खिलाफ अपने उपाय की तलाश करने के लिए सक्षम होना चाहिए।

अब यह देखा जाना है कि क्या वर्तमान मामले में जमानतदार को बरी कर दिया गया था क्योंकि प्रतिवादी ने उसके साथ समझौता किया था। डब्ल्यूएमसीएच आईटी (निर्णय-देनदार) के अनुसार निर्णय-देनदार 5,000 रुपये प्रति मासिक की किस्तों में देनदार राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हुए। राजा बहादुर धनराज गिरजी के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह भी तय किया गया है कि अगर जमानत बांड की शर्तों से पता चलता है कि सौहार्दपूर्ण समझौता मुकदमे के पक्षकारों के विचार के भीतर था और जमानतदार ने इस तथ्य को जानते हुए बांड निष्पादित किया, तो समझौता डिक्री के तहत उनकी देयता अर्जित हो सकती है। लेकिन अगर बॉन्ड की शर्तों से पता चलता है कि पार्टियों के बीच ऐसा कोई चिंतन नहीं था, तो पार्टियों के बीच समझौता जमानतदार के निर्वहन को प्रभावित करेगा। इसमें यह भी देखा गया है कि यदि न्यायिक कार्यवाही में कुछ बाहरी मामले पेश किए जाते हैं, तब भी जमानतदार को आरोपमुक्त कर दिया जाता है। उनके लॉर्डशिप की टिप्पणियों को पुन: प्रस्तुत करना उचित होगा जो इस प्रकार हैं:

> "यह सवाल कि क्या न्यायिक कार्यवाही में समझौते से जमानतदार की देयता का निर्वहन किया जाता है, जिसमें जमानती बॉन्ड निष्पादित किया जाता है, बॉन्ड की शर्तों पर ही निर्भर होना चाहिए। यदि शर्तों से संकेत मिलता है कि जमानतदार ने इस आधार पर दायित्व लिया कि विवाद को अदालत द्वारा गुण-दोष के आधार पर तय किया जाना चाहिए और सौहार्दपूर्ण ढंग से तय नहीं किया जाना चाहिए, तो समझौता जमानतके निर्वहन को प्रभावित करेगा।

नतीजतन, वर्तमान मामले में जहां जमानतदार बांड अदालत के पक्ष में निष्पादित किया गया था और इसके द्वारा जमानतदारों ने अदालत द्वारा फैसला सुनाए जाने पर प्रतिवादी की ओर से कुछ राशि का भुगतान करने का वचन दिया और पार्टियों के बीच समझौता डिक्री ने जटिल प्रावधान पेश किए, जिससे अपीलकर्ता प्रतिद्वंद्वी दावों के समायोजन में संपत्तियों का कब्जा लेने में सक्षम हो गया, दोनों पक्षों को अपने दायित्वों का निर्वहन करने के लिए समय दिया गया और न्यायिक कार्यवाही से अलग मामलों को शामिल किया गया, जिसमें जमानत बांड निष्पादित किया गया था।

उपर्युक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, समझौते की शर्तों पर विचार करना आवश्यक होगा। यह पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि निर्णय-देनदार के खिलाफ 60,000 रुपये की वसूली के लिए डिक्री-धारक के पक्ष में एक डिक्री पारित की गई थी और प्रति माह 5,000 रुपये की किस्तों में भुगतान किया जाना था। इस प्रकार निर्णय-देनदार को एक वर्ष तक का समय दिया गया ताकि वह देनदार को देय राशि का भुगतान कर सके। समय देने के अलावा, डिक्री-धारक और निर्णय-देनदार ने कुछ बाहरी मामलों से समझौता किया और समझौते के अनुसरण में, डिक्री-धारक! इसके पास पड़ी कुछ राशि का समायोजन सुरक्षा के रूप में किया और पट्टे पर लिए गए परिसर में लगाए गए कुछ प्रतिष्ठानों को ले लिया। समझौते की प्रासंगिक शर्तें खंड 5, 6 और 7 में निहित हैं, जो इस प्रकार हैं: –

"5. कि प्रतिवादी ने इस समझौते के निष्पादन के एक सप्ताह के भीतर विवाद में परिसर में स्थापित मशीनरी, आदि को अपनी लागत और खर्च पर हटाने का बीड़ा उठाया है।

6. यह कि उक्त मुकदमा शुरू होने के बाद प्रतिवादी द्वारा उक्त परिसर के उपयोग और कब्जे के लिए बकाया राशि 73,700 रुपये है, जिसमें 20 महीने की अवधि के लिए 67,000 रुपये की राशि शामिल है, यानी 1 दिसंबर, 1973 से 31 जुलाई, 1975 तक 3,350 रुपये प्रति माह की दर से। शेष 6,700 रुपये उस पर अर्जित ब्याज के लिए है।

7. यह कि 73,700 रुपये की उक्त राशि को इसके बाद वर्णित तरीके से समायोजित करने पर सहमति दी गई है। प्रतिवादी द्वारा अपनी लागत पर मुकदमा परिसर में लगाए गए केबल और इलेक्ट्रिक फिटिंग आदि की लागत 15,000 रुपये आंकी गई है। उपरोक्त राशि के अलावा, प्रतिवादी ने लाइसेंस के मूल समझौते के समय वादी के साथ अग्रिम के रूप में 10,000 रुपये की राशि पहले ही जमा कर दी है। प्रतिवादी ने वादी को आज 15,000 रुपये की नकद राशि का भुगतान किया है, जिसकी रसीद वादी स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रतिवादी से वादी द्वारा प्राप्त कुल राशि 40,000 रुपये बनती है। वादी 37,700 रुपये की शेष राशि को सरेंडर करने के लिए सहमत हो गया है और प्रतिवादी को उपरोक्त राशि के दायित्व से मुक्त करता है।

उपर्युक्त समझौते को पढ़ने से, यह स्पष्ट है कि डिक्री-धारक द्वारा निर्णयकर्ता को कुछ रियायतें दी गई थीं और विवाद में परिसर से कुछ मशीनरी आदि को हटाने की अनुमति दी गई थी। यह उन परिसरों में लगाए गए कुछ प्रतिष्ठानों को डिक्री-धारक को संपत्ति के बाद के किराए / नुकसान के भुगतान के लिए देने पर सहमत हुआ। इन प्रतिष्ठानों का मूल्य 15,000 रुपये आंका गया था। निर्णय-देनदार ने डिक्री-धारक को 15,000 रुपये का भुगतान भी किया। यदि डिक्री-धारक ने निर्णय-देनदार के साथ समझौता नहीं किया था, तो प्रतिष्ठान आदि जमानतदार के साथ सुरक्षा के रूप में रह सकते थे। हो सकता है कि

उसने 10,000 रुपये का लाभ भी लिया हो, जो डिक्री-धारक के पास अग्रिम के रूप में पड़ा था। शर्तों से यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि समझौता जमानतदार के हितों के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण था। सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियां पूरी तरह से मामले पर लागू होती हैं। जमानतदार बांड से कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। यह निष्कर्ष निकाला गया कि जमानतदार ने सहमति व्यक्त की थी कि डिक्री-धारक निर्णय-देनदार के साथ समझौता कर सकता है। उपरोक्त परिस्थितियों में, मेरे विचार में, सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियां वर्तमान मामले को पूरी तरह से कवर करती हैं, और डिक्री-धारक और निर्णय-देनदार के बीच समझौते को देखते हुए जमानतदारता का निर्वहन किया गया।

5) उपर्युक्त निष्कर्ष में, मुझे पृथी सिंह बनाम राम चर अग्रवाल, मामले में लाहौर उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ की टिप्पणियों से भी समर्थन मिलता है। उस मामले में जमानतदार द्वारा संहिता के आदेश 38 नियम 5 के तहत न्यायालय के पक्ष में एक जमानती बांड निष्पादित किया गया था और जमानतदार की जानकारी के बिना लेनदार और प्रमुख देनदार के बीच व्यवस्था की गई थी, जिसके आधार पर लेनदार के पक्ष में एक डिक्री पारित की गई थी और प्रमुख देनदार को किस्तों में राशि का भुगतान करने की अनुमति दी गई थी। विद्वान पीठ द्वारा यह देखा गया कि लेनदार और देनदार के बीच एक अनुबंध जिसके द्वारा ऋणी को समय देने का वादा किया गया था और किश्तों को जमानतदार की सहमति या यहां तक कि ज्ञान के बिना तय किया गया था, जो उसे लेनदार को मुख्य देनदार को पूरे ऋण का भुगतान करने या पूरे ऋण का भुगतान करने और फिर इसे मूल देनदार से वसूलने के लिए कहने से रोकता था। धारा 135, 139 और 141 की शर्तों के भीतर और जमानतदार को उसके दायित्व से मुक्त कर दिया जाता है। वर्तमान मामले में, निर्णय-देनदार को देय राशि के भुगतान के लिए समय देने के अलावा, उसे कुछ अन्य रियायतें दी गई थीं, जिसके कारण जमानतदार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। केरल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने भी इसी तरह का रुख अपनाया था।

उस मामले में एक मुकदमे के लंबित रहने के दौरान लेनदार और प्रमुख देनदार के बीच एक समझौता हुआ था, जिसके संदर्भ में एक निश्चित राशि के लिए लेनदार के पक्ष में एक डिक्री पारित की गई थी और निर्णय-देनदार को भुगतान करने के लिए नौ महीने का समय दिया गया था। इससे पहले अदालत के पक्ष में जमानतदार द्वारा एक जमानती बांड प्रस्तुत किया गया था। यह माना गया था कि लेनदार और प्रमुख देनदार के बीच ऋण का भुगतान करने के लिए नौ महीने का समय देने के समझौते ने जमानत का निर्वहन किया। बहुत सम्मान के साथ मैं उपर्युक्त मामलों में विद्वान पीठों की टिप्पणियों से सहमत हूं।

6) प्रतिवादी के वकील ने जोरदार आग्रह किया है कि लेनदार द्वारा समझौते के आधार पर निर्धारित की गई राशि का भुगतान करने के लिए मुख्य देनदार को समय देना या प्रमुख देनदार को किस्तों में भुगतान करने की अनुमति देना, जमानत का निर्वहन नहीं करता है। उन्होंने अपने दावे के समर्थन में जतिंद्र नारायण देब बनाम गौरांग चंद्र दत्ता बनिक और एक अन्य, और मोहन लाल बनाम सूरज मणि और एक अन्य, का उल्लेख किया। सर्वोच्च. अदालत ने दृढ़ता से निर्धारित किया है कि जमानत बांड की शर्तों को यह निर्धारित करने के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या जमानतदार ने सहमति व्यक्त की थी कि निर्णय-देनदार समझौते के आधार पर डिक्री का सामना कर सकता है और यदि अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि जमानतदार जानता था कि वह समझौता डिक्री के तहत उत्तरदायी हो सकता है, तब वह इस तरह के आदेश के तहत उत्तरदायी रहेगा। राजा बहादुर धनराज गिरजी के मामले का फैसला आने से पहले जतिंद्र नारायण देब के मामले का फैसला आ गया था। इस स्थिति में उक्त मामले पर भरोसा करना

उचित नहीं होगा। मोहन लाल के मामले में, विद्वान पूर्ण पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि जमानत बांड के निष्पादन के समय, सहमति डिक्री पारित करना पार्टियों के विचार के भीतर था। इस प्रकार उस मामले में टिप्पणियों को उसमें दिए गए तथ्यों के संदर्भ में लिया जाना चाहिए। मेरे विचार में, प्रतिवादी के वकील उक्त टिप्पणियों से कोई लाभ नहीं ले सकते हैं।

7) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद मेरी राय है कि वर्तमान मामले में, आयकर डिक्री-धारक और निर्णय-देनदार के बीच समझौता, जमानतदार को छुट्टी दे दी गई।

8) इस कठिनाई का सामना करते हुए, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने यह तर्क देने की मांग की कि निष्पादन न्यायालय के आदेश के खिलाफ कोई पुनरीक्षण याचिका सुनवाई योग्य नहीं थी। उनके अनुसार, यदि एक ही मामले पर दो विचार लिए जा सकते हैं और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने कानून के गलत दृष्टिकोण पर मामले को एक तरह से तय किया है, तो इसे अधिकार क्षेत्र की त्रुटि नहीं कहा जा सकता है। मैं विद्वान वकील के इस तर्क से सहमत नहीं हूं। वर्तमान मामले में, मेरे विचार में, न्यायालय ने अवैध रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए कार्य किया है और ऐसी स्थिति में यह न्यायालय संहिता की धारा 115 के तहत अपने आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है। इसमें प्रावधान है कि यदि किसी अधीनस्थ न्यायालय ने अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग अवैध रूप से किया है, तो उच्च न्यायालय ऐसा आदेश दे सकता है जो वह उचित समझता है। इस प्रकार के मामलों में यह न्यायालय हमेशा मामले में जा सकता है और नीचे दिए गए न्यायालयों के फैसले को परेशान कर सकता है।

9) ऊपर दर्ज कारणों के लिए, मैं पुनरीक्षण याचिका स्वीकार करता हूं, नीचे दिए गए न्यायालय के आदेश को रद्द करता हूं और जमानत पर रिहा करता हूं। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

हिमांशु जांगड़ा

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी